

| | | |
|--------|---------------------------------------|-------|
| 1. | Einleitung | S. 2 |
| 2. | Ordnung der Dinge nach Foucault | S. 5 |
| 2.1. | Die vier Ähnlichkeiten | S. 7 |
| 3. | Das Wissen des Ähnlichen | S. 9 |
| 4. | Heutige Anordnung der Dinge | S. 11 |
| 4.1. | Dinge als Waren | S. 15 |
| 4.2. | Umdeutung der Dinge | S. 17 |
| 5. | Die Ähnlichkeit der Sprache | S. 18 |
| 5.1. | Sprache und Dinge | S. 19 |
| 5.1.1. | Die Magie der Worte | S. 21 |
| 5.2. | Die Sprache der Dinge | S. 21 |
| 5.3. | Sprache oder Schrift | S. 23 |
| 6. | Objekttheater | S. 25 |
| 6.1. | Dinge | S. 28 |
| 6.2. | Der Mensch | S. 30 |
| 6.3. | Sprache und Objekttheater | S. 31 |
| 7. | Beispielinszenierungen | S. 34 |
| 7.1. | Gyula Molnar: <i>Gagarin</i> | S. 36 |
| 7.2. | Alibi Collectief: <i>Broccolages</i> | S. 39 |
| 8. | Sich „ähnlich“ machen | S. 44 |
| 9. | Der Mensch in der Ordnung | S. 46 |
| 10. | Der Mensch im Objekttheater | S. 50 |
| 10.1. | Gyula Molnar und das Alibi Collectief | S. 53 |
| 11. | Der Zuschauer | S. 54 |
| 11.1. | Der Zuschauer als Spiegel | S. 57 |
| 12. | Ausblick | S. 58 |
| | Literaturliste | S. 62 |